सिमरन

भाग - ५

सिमरन में **'ध्यान'** का विशेष महत्त्व है, इसलिए इस विषय पर विस्तारपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

जब हम किसी बात या वस्तु की ओर 'ध्यान' देते हैं तो हमारे मन का उससे **सम्बन्ध या मेल** (communion) हो जाता है तथा हम उससे लेन-देन करते हैं, उसका अच्छा बुरा **प्रभाव लेते-देते हैं**। जिस बात या वस्तु में हमारी दिलचस्पी न हो, उसमें हमारा 'ध्यान' नहीं लगता तथा हम पर उसका **नाम-मात्र** असर ही होता है। दूसरे शब्दों में उससे मेल, संगत, सांझेदारी **या 'लेन-देन' नहीं होता।**

कुछ उदाहरणों द्वारा इस बात को स्पष्ट किया गया है –

घरों में रेडियो या टेपरिकार्डर द्वारा कीर्तन या पाठ हो रहा होता है परन्तु घर के सदस्य अपनी घरेलू उलझनों में लगे रहते हैं या बातों में मस्त होते हैं।

इसी प्रकार जब हम स्वयं पाठ या सिमरन करते हैं, तो हमारी चेतना **'अनेक- चिंतन'** में व्यस्त होती है, जिस कारण हमारा ध्यान गुरबाणी की ओर नहीं होता।

आम संगत की भी यही शिकायत है कि **'सिमरन'** में मन नहीं टिकता।

जब हमारी चेतना या 'ध्यान' गुरबाणी अथवा सिमरन में न हो, तो हम गुरबाणी की **संगत नहीं कर रहे होते**। इस कारण हमारा गुरबाणी

के **आन्तरिक आत्मिक भावों से संग या मेल नहीं होता ।** इस प्रकार पवित्र-पावन-गुरबाणी की **संगत नहीं होती** जिसके फलस्वरूप हम गुरबाणी की **पारस कला से वंचित रहते हैं ।**

पड़ीऐ गुनीऐ नामु सभु सुनीऐ अनभउ भाउ न दरसै ॥
लोहा कंचनु हिरन होइ कैसे जउ पारसहि न परसै ॥ (पृ. १७३)

दूसरे शब्दों में 'चेतना' या **ध्यान के बिना जो** भी कर्म-धर्म हम करते हैं **सब बेध्यान गैरहाजरी में ही करते हैं ।** इसलिए हम साध संगत या **सत-संगत से पूरा लाभ नहीं लेते** तथा गुरबाणी के पाठ, कीर्तन और **'सिमरन' के आत्मिक लाभ से वंचित रहते हैं ।**

यही कारण है कि पिछले जमाने से आजकल बहुत अधिक —

धर्म
धर्म-ग्रन्थ
धर्म स्थान
धर्म प्रचार
सत्संग
पाठ-पूजा
कीर्तन
जप-तप
कर्म-कांड

आदि के **बावजूद** हमारी मानसिक तथा आत्मिक अवस्था में परिवर्तन नहीं आता — बल्कि हमारी मानसिक दशा पहले से गिरती जा रही है —

पंडित पड़हि सादु न पावहि ॥
दूजै भाइ माइआ मनु भरमावहि ॥ (पृ. ११६)

रहत अवर कछु अवर कमावत ॥
मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत ॥ (पृ. २६९)

पड़े सुने किआ होई ॥
जउ सहज न मिलिओ सोई ॥ (पृ. ६५५)

हिदै कपटु मुख गिआनी ॥
झूठे कहा बिलोवसि पानी ॥ (पृ. ६५६)

'चेतना' अथवा 'ध्यान' के बिना हमारा जीवन निर्जीव या पदार्थिक वस्तुओं (matter) की भाँति ही है । इसलिए जीवों का आपस में सूक्ष्म, मानसिक तथा आत्मिक सतह पर मेल-मिलाप, संगति, सांझेदारी या लेन-देन नहीं हो सकता ।

मिलिऐ मिलिआ ना मिलै मिलै मिलिआ जे होइ ॥
अंतर आतमै जो मिलै मिलिआ कहीऐ सोइ ॥ (पृ. ७९१)

जो दिलि मिलिआ सु मिलि रहिआ मिलिआ कहीऐ रे सोई ॥
जे बहुतेरा लोचीऐ बाती मेलु न होई ॥ (पृ. ७२५)

मनुष्य तथा जानवरों में इसी 'चेतना' का ही अन्तर है । मनुष्य में यह चेतना (consciousness) अति तीक्ष्ण, तीव्र तथा सूक्ष्म-भावों (subtle feelings) वाली होती है – जिस कारण यह संगति द्वारा पवित्र-पावन आत्मिक प्रेम भावनाओं को **ग्रहण करके,** रंग रस को अनुभव कर सकते हैं । परन्तु जानवरों में यह चेतना निम्न कोटि की, मोटी तथा स्थूल होती है, जो सूक्ष्म आत्मिक भावना को ग्रहण करने में असमर्थ होती है ।

हमारी दिलचस्पी के अनुसार ही हमारे मन का 'ध्यान' आकर्षित होता है । जन्मों-जन्मों से हमारा मन इलाही मंडल से टूटा हुआ है तथा मायकी-मंडल में गलतान हो कर सूक्ष्म प्रेम-भावनाओं को ग्रहण करने में अस्मर्थ हो चुका है ।

दूसरे शब्दों में, **दैवीय-चेतनता** के बिना हमारी चेतना भी जानवरों की भांति ही स्थूल तथा जड़ हो चुकी है –

जो न सुनहि जसु परमानंदा ॥
पसु पंखी त्रिगद जोनि ते मंदा ॥ (पृ. १८८)
करतूति पसू की मानस जाति ॥ (पृ. २६७)

बिनु संगती सभि ऐसे रहहि जैसे पसु ढोर ।। (पृ. ४२७)

जिहवा इंद्री सादि लुोभाना ।।
पसू भए नही मिटै नीसाना ।। (पृ. ९०३)

साधसंगति कबहू नही कीनी रचिओ धंधै झूठ ।।
सुआन सूकर बाइस जिवै भटकतु चालिओ ऊठि ।।
(पृ. ११०५)

मनमुखि अंधुले गुरमति न भाई ।।
पसू भए अभिमानु न जाई ।। (पृ. ११९०)

मनमुख विणु नावै कूड़िआर फिरहि बेतालिआ ।।
पसू माणस चंमि पलेटे अंदरहु कालिआ ।। (पृ. १२८४)

हमारी 'पशु वृत्ति' या 'निम्न चेतना' को बदलने के लिए, अथवा इसे ऊँचा, अच्छा तथा आत्म परायण करने के लिए गुरबाणी में एकमात्र साधन या युक्ति बताई गई है, वह है –

'सति-संगति' अथवा 'साधसंगति'

साधू कै संगि पाप पलाइन ।।
साधसंगि अंम्रित गुन गाइन ।। (पृ. २७१)

जो जो जपै तिस की गति होइ ।।
साधसंगि पावै जनु कोइ ।।
करि किरपा अंतरि उर धारै ।।
पसु प्रेत मुघद पाथर कउ तारै ।। (पृ. २७४)

ऊठत बैठत हरि भजहु साधू संगि परीति ।।
नानक दुरमति छुटि गई पारब्रहम बसे चीति ।। (पृ. २९७)

जिउ छुहि पारस मनूर भए कंचन तिउ पतित जन
मिलि संगती सुध होवत गुरमती सुध हाधो ।। (पृ. १२९७)

गुरमुखि सुख फलु साधसंगु पसू परेत पतित निसतारे ।
(वा.भ.गु. १६/७)

किसी ख्याल को एक केन्द्र पर एकाग्र करने को **'ध्यान'** या **'सुरति वृत्ति'** कहा जाता है।

मायकी और आत्मिक उन्नति या कामयाबी के लिए **'ध्यान'** अति-आवश्यक है।

जितना गहरा, एकाग्र 'एक सूई' तथा तीक्ष्ण 'ध्यान' किसी काम में लगाया जाएगा, उतना ही वह कार्य सुंदर, सार्थक तथा लाभदायक होगा।

ध्यान दिये बिना हमारी कोई योजना, सोच-विचार तथा कार्य सफल नहीं हो सकता।

ऊपरी-ऊपरी मन से किए कार्य –

अधूरे

गलत

लाभहीन

हानिकारक

दुखदायी

होते हैं।

इसी प्रकार बिना **'ध्यान'** दिये धार्मिक पाठ-पूजा तथा कर्म-क्रिया भी –

फीके

रसहीन

भावना-हीन

लाभ-हीन

मृतक साधन

ही बन कर रह जाते हैं।

सुलतानपुर में गुरू नानक साहिब जी का काज़ियों की बेध्यानी नमाज में सम्मिलित ना होना इसी बात का प्रतीक है कि **'ध्यान' के बिना**

हमारे धार्मिक क्रिया-कर्म निष्फल ही हैं ।

जिन कउ प्रीति रिदै हरि नाही तिन कूरे गाढन गाढे ।। (पृ. १७१)

जो दूजै भाइ साकत कामना अरथि दुरगंध सरेवदे
सो निहफल सभु अगिआनु ।।
जिसनो परतीति होवै तिस का गाविआ थाइ पवै
सो पावै दरगह मानु ।।
जो बिनु परतीती कपटी कूड़ी कूड़ी अरवी मीटदे
उन का उतरि जाइगा झूठु गुमानु ।।
(पृ. ७३४)

टैलीफोन (telephone) के द्वारा बातचीत करने अथवा मेल-जोल करने के लिए किसी खास नम्बर का मिलना अनिवार्य है । यदि नम्बर न मिले या रिसीवर (receiver) न उठाया जाए तो दोनो पक्षों के बीच –

बातचीत नहीं होती,
सांझेदारी नहीं होती,
लेन-देन नहीं होता,
वाणिज्य व्यापार नहीं होता ।

ठीक इसी प्रकार यदि पाठ-पूजा, भजन-बंदगी करते हुए हमारा मन अथवा ध्यान **'सावधान एकाग्रचीत' न हो** तो गुरबाणी के अंतरीव, गहरे तथा अति सूक्ष्म भावों से हम **वंचित रहते हैं** तथा **गुरबाणी या सिमरन की पारस कला भी हम पर नहीं घटती ।**

इसीलिए गुरबाणी में हमें बार-बार ताकीदी हुक्म दिया गया है –

इक मनि एकु धिआईऐ मन की लाहि भरांति ।। (पृ. ४७)

प्रभ की उसतति करहु संत मीत ।।
सावधान एकागर चीत ।। (पृ. २९५)

ए मन हरि जी धिआइ तू
इक मनि इक चिति भाइ ।। (पृ. ६५३)

इक चिति इक मनि धिआइ सुआमी
लाइ प्रीति पिआरो ।। (पृ. ८४५)

नानक वाहु वाहु जो **मनि चिति करे**
तिसु जमकंकरु नेड़ि न आवै ।। (पृ. ५१५)

इक मन इकु आराधणा
गुरमति आपु गवाइ सुहेले । (वा.भा.गु. ५/६)

कुरबाणी तिन्हां गुरसिखां
होइ इक मनि गुर जापु जपंदे । (वा.भा.गु. १२/२)

'ध्यान' अथवा **एकाग्रता के बिना** मन की दशा के विषय में गुरबाणी यूं प्रताड़ित करती है –

रहत अवर कछु अवर कमावत ।।
मनि नही प्रीति मुखहु गंढ लावत ।। (पृ. २६९)

जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि कांढे कचिआ ।। (पृ. ४८८)

हमरै जीइ होरु मुखि होरु होत है
हम करमहीण कूड़िआरी ।। (पृ. ५२८)

ऐसी दशा का विशेष तथा **व्यवहारिक दृष्टांत** हमारा अपना **'मायकी जीवन' ही है ।**

'जीव' अहम् की भ्रम-भ्रांति द्वारा अपने स्रोत अकालपुरुष को **भुला कर** कई जन्मों से मोह-माया की दलदल में फँसा हुआ है अथवा 'द्वैत-भाव' में गलतान है –

हरि साजनु पुरखु विसारि कै लगी माइआ धोहु ।।
पुत्र कलत्र न संगि धना हरि अविनासी ओहु ।।
पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ।। (पृ. १३३)

माइआ मोहि नटि बाजी पाई ।।
मनमुख अन्ध रहे लपटाई ।। (पृ. २३०)

नाथ कछूअ न जानउ ॥
मनु माइआ कै हाथि बिकानउ ॥.........
इन पंचन मेरो मनु जु बिगारिओ ॥
पलु पलु हरि जी ते अंतरु पारिओ ॥ (पृ. ७१०)

जन्मों-जन्मों से इस झूठी माया में हम इतने गलतान हैं कि हमारा जीवन **'माया का रूप' ही बन गया है ।** इसलिए हमारे –

ख्याल
कल्पनाएं
सोच-विचार
इच्छाएं
आशाएं
प्यार
भावनाएं
निश्चय
श्रद्धा
संगति
लेन-देन
धर्म-कर्म
साधना

अथवा **संपूर्ण जीवन को ही मोह-माया की गहरी रंगत** चढ़ी हुई है जिस कारण हमारी –

चेतना
ध्यान
सुरति
वृत्ति
लिव

– इस झूठी माया में **अचेत, सहज स्वाभाविक, अनजाने ही ऐसी धँस चुकी** है कि इससे बाहर, **कहीं और हमारा 'ध्यान' जाना**

असंभव है ।

हमारे अन्दर इस झूठी माया की –

चेतना
ख्याल
ध्यान
संगत
विश्वास
वृत्ति
लिव

– आदि, पिछले अनेक जन्मों में 'माया' की –

संगत करने
विचार करने
याद करने
सिमरन करने
अभ्यास करने

से **इतनी दृढ़ हो चुकी है कि मायकी चेतना** (materialistic consciousness) ही हमारा **जीवन रूप** बन चुकी है और इस **'मायकी जीवन'** में ही हम –

जन्म लेते
जीवन जीते
विचरण करते
कर्म करते
परिणाम भोगते
मरते
यम के बस पड़ते
फिर दुबारा जन्म लेते हैं ।

हरि बिसरिऐ किउ त्रिपतावै ना मनु रंजीऐ ।।
प्रभू छोडि अन लागै नरकि समंजीऐ ।। (पृ. ७०८)

जमि जमि मरै मरै फिरि जंमै ।।
बहुतु सजाइ पइआ देसि लंमै ।।
जिनि कीता तिसै न जाणी अंधा ता दुखु सहै पराणीआ ।।
(पृ. १०२०)

माइआ मोहि बहु भरमिआ ।।
किरत रेख करि करमिआ ।। (पृ. ११९३)

हम जितने भी धार्मिक क्रिया-क्रर्म अथवा पाठ-पूजा **मन की मैल उतारने के लिए करते हैं, उससे कई गुणा अधिक मैल अपनी रुचियों के अनुसार और चढ़ाए जाते हैं ।**

इस प्रकार प्रतिदिन के पाठ-पूजा के बावजूद हमारा मानसिक **'बही खाता'** (debtor balance) घाटे में जा रहा है और हमारी अवनति हो रही है ।

जब हमारा ध्यान किसी तुच्छ विचार या वस्तु की तरफ जाए तो मन का रुख या **ध्यान तत्काल किसी ऊँची उत्तम दिशा की ओर मोड़ना चाहिए।** परन्तु माया के मलिन भँवर में फंस कर विचरण करते हुए हमारा मन अति निर्बल हो चुका है जिस कारण मन का झुकाव या ध्यान **नीचे से ऊँचे पवित्र** मंडल की ओर ले जाना अति कठिन है ।

यह उल्टी **प्रक्रिया** अथवा **आत्मिक बदलाव** अत्यधिक लम्बी तथा **कठिन 'खेल' है,** जो बख्शे हुए गुरमुख-प्यारों, महापुरुषों की **'लगातार संगति' अथवा साधसंगति तथा सेवा-भावना द्वारा सरल और शीघ्र सम्भव हो सकती है।**

खिनहूं किरपा साधू संग नानक हरि रंगु लाइओ ।। (पृ. ४०९)

किरपा करे जिसु पारब्रहमु होवै साधू संगु ।।
जिउ जिउ ओहु वधाईऐ तिउ तिउ हरि सिउ रंगु ।। (पृ. ७१)

किसी कार्य की पूर्ति के लिए जब हम सारी शक्ति लगाकर असमर्थ हो जाते हैं तो किसी अन्य शक्ति की ओट या सहारा लेते हैं। इसी प्रकार जब हमारा मन हमारे बस से बाहर हो जाता है, तो किसी शक्तिमान दैवीय-मंडल अथवा **साध-संगति की ओट** या **आश्रय की आवश्यकता पड़ती है ।**

साध कै संगि न कतहूं धावै ।।
साधसंगि **असथिति मनु पावै ।।** (पृ. २७१)

नानक तिन संतन सरणागती जिन मनु वसि कीना ।। (पृ. ८१५)

मनूआ चलै चलै बहु बहु बिधि
मिलि साधू वसगति करिआ ।। (पृ. १२९४)

मन असाधु न साधीऐ
गुरमुखि सुख फलु साधि सधाइआ ।
साधसंगति मिलि मन वसि आइआ । (वा.भा.गु. २९/९)

इसलिए गुरबाणी में हमें बार-बार 'साध-संगति' अथवा सत-संगति करने की ताकीदी प्रेरणा दी गई है –

सुणि साजन मेरे मीत पिआरे ।।
साधसंगि खिन माहि उधारे ।। (पृ. १०३)

कोटि बिघन हिरे खिन माहि ।।
हरि हरि कथा **साधसंगि सुनाहि ।।** (पृ. १९५)

जीति जनमु इहु रतनु अमोलकु
साधसंगति जपि इक खिना ।। (पृ. २१०)

महा पवित्र साध का संगु ।।
जिसु भेटत **लागै प्रभ रंगु ।।** (पृ. ३९२-९३)

नानक पतित पवित मिलि संगति
गुर सतिगुर **पाछै छुकटी ।।** (पृ. ५२८)

साधसंगि मिलि नामु धिआवहु **पूरन होवै घाला ।।** (पृ. ६१७)

हमारी धरती में अत्यंत 'आकर्षण-शक्ति' (gravity) है जिसके कारण हर वस्तु धरती की ओर खिंची जा रही है ।

धरती के आस-पास ब्रहमांड के कई मीलों तक यह आर्कषण शक्ति काम करती है उस से ऊपर अनंत 'आकाश' है जिसमें कोई आर्कषण शक्ति नहीं होती । इस अंतरिक्ष में यदि कोई वस्तु पहुँच जाए तो वह सदा वहीं खड़ी रहती है ।

इस 'सृष्टि' में हमारी धरती की भांति और भी अनेक ग्रह तथा उपग्रह या 'सितारे' हैं, जिनके चारों ओर भी धरती की भांति अलग-अलग श्रेणी की आकर्षण शक्ति होती है । जब कोई वस्तु अंतरिक्ष में से निकल कर किसी अन्य ग्रह के वायुमंडल में प्रवेश करती है तो उस ग्रह की अपनी आर्कषण शक्ति उसे अपनी ओर खींच लेती है ।

उदाहरणतः वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार 'चन्द्र-ग्रह' में उसकी अपनी 'आर्कषण शक्ति' है, तथा जो भी वस्तु चन्द्रमा के वायुमण्डल में प्रवेश कर जाए, वह उस आकर्षण शक्ति से प्रभावित होकर चन्द्रमा के केन्द्र (centre) की ओर खिंच जाती है ।

ठीक इसी प्रकार हमारा मन भी सहज स्वाभाविक **मायकी शक्तिशाली आकर्षण शक्ति से प्रभावित होकर 'माया' की ओर खिंचा जा रहा है,** जिस कारण हम अनजाने ही सारी उमर इस 'मायकी-मंडल' में 'पलचि-पलचि' कर गोते खा रहे हैं ।

पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु ॥ (पृ. १३३)

मंदा चितवत चितवत पचिआ ॥
जिनि रचिआ तिनि दीना धाकु ॥ (पृ. ८२५)

मायकी-मंडल की 'आकर्षण शक्ति' या खिंचाव को समझने तथा इससे मुक्त होने के लिए अनुभवी ज्ञान के दैवीय प्रकाश की आवश्यकता है । **साध-संगति अथवा सति-संगति के सहारे ही हम इसके दायरे से निकल सकते हैं ।** जब भी हमारा मन साध-संगति से बाहर होता है, मायावी आकर्षण-शक्ति हमारे मन पर हावी हो जाती है तथा हम फिर

मायकी 'अग्नि-शोक सागर' में गोते खाने लगते हैं।

महा अभाग अभाग है जिन के तिन साधू धूरि न पीजै ।।
तिना तिसना जलत जलत नही बूझहि
डंडु धरम राइ का दीजै ।। (पृ. १३२५)

इसीलिए जिज्ञासुओं को यह कहते सुना गया है कि जब तक साध-संगति के वातावरण में रहते हैं तब तक मन एकाग्र हुआ रहता है तथा 'ध्यान' नाम-बाणी-सिमरन में लगा रहता है परन्तु जैसे ही साध-संगति से बाहर जाते हैं तत्काल अनजाने ही, सहज-स्वाभाविक मन माया की ओर **खिंच जाता है** तथा हम नाम-बाणी-सिमरन के दैवीय भाव से वंचित हो जाते हैं ।

दूसरे शब्दो में **साध-संगति की प्रेरणा द्वारा हमारे 'ध्यान' की सुरति, 'आत्मिक-मंडल' के दैवीय 'प्रेम-स्वैपना' के आकाश में उड़ान भर सकती है ।**

इसके विपरीत साध-संगति के आत्मिक वातावरण (aura) में से **निकलते ही, हमारे अन्तःकरण के तुच्छ स्वभाव तथा मलिन** व्याधियों के कारण **हमारा 'ध्यान' पुनः मायकी-मंडल की ओर खिंच जाता है ।**

इसलिए मन के 'ध्यान' को **सतिसंगति अथवा साध-संगति में नाम-बाणी-सिमरन की ओर मोड़ने के लिए** गुरबाणी में जोरदार प्रेरणा की गई है ।

सतसंगति लगि हरि धिआईऐ
हरि हरि चलै तेरै नालि ।। (पृ. २३४)
साधसंगि हरि कै रंगि गोबिंद सिमरण लागिआ ।। (पृ. ४५७)
सतसंगति गुर की हरि पिआरी
जिन हरि हरि नामु मीठा मनि भाइआ ।। (पृ. ४९४)
साधसंगि हरि हरि नामु चितारा ।। (पृ. ७१७)
मिलि साधू हरि नामु धिआईऐ ।। (पृ. ८०४)

मनि तनि प्रभु आराधीऐ मिलि साध समागै ॥ (पृ. ८१७)

सचु रूपु सचु नाउ गुर गिआनु धिआनु सिखा समझाइआ ।
(वा.भा.गु. ६/१)

साधसंगति करि साधना इक मनि इकु धिआई ।
(वा.भा.गु. ९/५)

यह **'मायकी-मंडल'** या **'आत्मिक-मंडल'** कोई अलग-अलग देश, टापू या ग्रह आदि नहीं है। यह तो मानसिक भावनाओं के **उतार-चढ़ाव** की सूक्ष्म अवस्थाएं या **खेल ही है,** जिसे कोई विरला गुरमुख ही जानता या पहचानता है –

विरले कउ सोझी पई गुरमुखि मनु समझाइ ॥ (पृ. ६२)

गुरमुखि खोटे खरे पछाणु ॥
गुरमुखि लागै सहजि धिआनु ॥ (पृ. ९४२)

दिब दिसटि गुर धिआनु धरि सिख विरला कोई ।

रतन पारखू होइ कै रतना अवलोई । (वा.भा.गु. ९/७)

साध संगति की –

ओट
प्रेरणा
मार्गदर्शन
सहायता

– लेकर मन के 'ध्यान' या 'सुरति-वृत्ति' के रुख को 'आत्मिक-मंडल' की ओर मोड़ना ही जिज्ञासुओं का दैवीय कर्तव्य है ।

- क्रमशः